International Journal of Financial Management and Economics

**P-ISSN:** 2617-9210
**E-ISSN:** 2617-9229
IJFME 2026; 9(1): 127-133
www.theeconomicsjournal.com
Received: 02-01-2026
Accepted: 23-01-2026

**Dr. Mantha Srinivasu**
Joint Secretary, University Grants Commission, New Delhi, India

**Corresponding Author:**
**Dr. Mantha Srinivasu**
Joint Secretary, University Grants Commission, New Delhi, India

# कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रशासन-सूत्र और आधुनिक शैक्षिक प्रशासन के निहितार्थ

**Mantha Srinivasu**

**DOI:** https://ww.doi.org/10.33545/26179210.2026.v9.i1.924

**सारांश**

प्रस्तुत शोध-आलेख कौटिल्य (चाणक्य/विष्णुगुप्त) प्रणीत अर्थशास्त्र में निहित प्रशासन-सूत्रों का पाठ-विश्लेषण कर आधुनिक शैक्षिक प्रशासन के लिए उनके निहितार्थों की विवेचना करता है। अर्थशास्त्र केवल राजनीति अथवा अर्थ-व्यवस्था का ग्रन्थ नहीं, अपितु संगठन-संचालन, मानव-संसाधन-चयन, पर्यवेक्षण, वित्तीय शुचिता और नेतृत्व-नैतिकता का व्यवस्थित शास्त्र है। अध्ययन में विद्या-चतुष्टय (१.२–१.४), विनय एवं इन्द्रियजय (१.५–१.६), अमात्य-सम्पत् (१.९), उपधा-परीक्षा (१.१०), वेतन-व्यवस्था (५.३), सप्ताङ्ग-सिद्धान्त (६.१), अध्यक्ष-प्रणाली (अधिकरण २) तथा राजा की दिनचर्या (१.१९) से सम्बद्ध पाठांशों का विश्लेषण किया गया है और उन्हें चयन-प्रक्रिया, सत्यनिष्ठा-परीक्षण, अभिप्रेरणा, संस्थागत संरचना, अनुश्रवण, लेखा-परीक्षा और सेवक-नेतृत्व जैसी आधुनिक प्रशासनिक अवधारणाओं तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० की संस्थागत-नेतृत्व-सम्बन्धी अपेक्षाओं से समन्वित किया गया है। निष्कर्षतः, राजतन्त्रीय सन्दर्भ की सीमाओं के प्रति सजग रहते हुए विवेकपूर्ण चयन-दृष्टि से अर्थशास्त्र के अनेक सूत्र — आत्म-अनुशासित नेतृत्व, योग्यता-आधारित नियुक्ति, पारदर्शी वित्त-प्रबन्धन और प्रजा-सुख-केन्द्रित सेवा-भाव — आज के विद्यालयी एवं उच्च-शिक्षा-प्रशासन के लिए प्रासंगिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

**कूटशब्द :** कौटिल्य, अर्थशास्त्र, शैक्षिक प्रशासन, नेतृत्व, सप्ताङ्ग सिद्धान्त, राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०

## 1. प्रस्तावना

प्रशासन-चिन्तन भारतीय बौद्धिक परम्परा का कोई आयातित विषय नहीं है। वेदों के दान-स्तुति-सूक्तों से लेकर महाभारत के शान्तिपर्व, मनुस्मृति के राजधर्म-प्रकरण, शुक्रनीति और कामन्दकीय नीतिसार तक — शासन, संगठन और लोक-कल्याण के प्रश्नों पर भारत में सहस्राब्दियों से सुव्यवस्थित विमर्श होता रहा है। इस परम्परा का शिखर-ग्रन्थ निःसन्देह कौटिल्य का अर्थशास्त्र है, जिसे आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य की कृति माना जाता है और जिसका वर्तमान पाठ १९०९ में आर. शामशास्त्री द्वारा सम्पादित होकर आधुनिक विद्वज्जगत् के समक्ष आया।[1] अर्थशास्त्र की विलक्षणता यह है कि वह राज्य को केवल दण्ड-शक्ति का उपकरण नहीं, अपितु एक सुसंगठित, उत्तरदायी और लोक-हितकारी *संस्था* के रूप में देखता है — ऐसी संस्था जिसके संचालन के लिए योग्य मनुष्यों का चयन, उनका परीक्षण, उनका पर्यवेक्षण, उनकी अभिप्रेरणा और स्वयं नेतृत्व का आत्म-अनुशासन अनिवार्य है। यही वे प्रश्न हैं जो आज का शैक्षिक प्रशासन भी पूछता है।

आधुनिक भारतीय सन्दर्भ में यह विमर्श विशेष रूप से समयोचित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० ने शैक्षिक संस्थाओं के लिए सक्षम, नैतिक और स्वायत्त नेतृत्व की माँग को केन्द्रीय स्थान दिया है — उच्च-शिक्षा-संस्थाओं में शासी मण्डल (Board of Governors) की स्थापना, संस्थागत विकास योजना का निर्माण, प्रधानाचार्यों एवं संस्था-प्रमुखों का नेतृत्व-विकास, तथा पारदर्शी, उत्तरदायी और नियम-आधारित प्रशासनिक संस्कृति का निर्माण उसकी घोषित प्राथमिकताएँ हैं।[2] नीति स्वयं भारतीय ज्ञान-परम्परा से प्रेरणा लेने का आग्रह करती है और तक्षशिला-नालन्दा जैसी संस्थाओं का स्मरण कराती है। ऐसे में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जिस परम्परा में तक्षशिला के आचार्य चाणक्य ने प्रशासन का शास्त्र रचा, उस शास्त्र के सूत्र आज की शिक्षा-संस्थाओं के संचालन को क्या दिशा दे सकते हैं?

[1] आर. शामशास्त्री द्वारा मैसूर से अर्थशास्त्र का प्रथम मुद्रित संस्करण (१९०९) एवं अंग्रेज़ी अनुवाद (१९१५) प्रकाशित हुआ; तत्पश्चात् पाठ-समीक्षा का प्रामाणिक कार्य आर. पी. कांगले ने किया। द्रष्टव्य: R. P. Kangle, The Kauṭilīya Arthaśāstra, Part I (समीक्षित पाठ), University of Bombay.

[2] शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० (हिन्दी संस्करण), विशेषतः उच्च-शिक्षा-संस्थाओं के प्रभावी अभिशासन एवं नेतृत्व सम्बन्धी अनुच्छेद (अध्याय १९) तथा विद्यालय-संकुल एवं प्रधानाचार्य-नेतृत्व सम्बन्धी प्रावधान।

**अध्ययन का उद्देश्य** — प्रस्तुत अध्ययन के तीन उद्देश्य हैं: (क) अर्थशास्त्र के उन पाठांशों की पहचान एवं विश्लेषण, जिनमें प्रशासन के सामान्य सिद्धान्त — नेतृत्व-योग्यता, कार्मिक-चयन, संगठन-संरचना, वित्त-नियन्त्रण, पर्यवेक्षण एवं सेवा-भाव — निरूपित हैं; (ख) इन सूत्रों का आधुनिक शैक्षिक प्रशासन की अवधारणाओं (चयन, अभिप्रेरणा, अनुश्रवण, लेखा-परीक्षा, सेवक-नेतृत्व, POSDCORB) से समन्वय; तथा (ग) इस समन्वय की सीमाओं और आवश्यक सावधानियों का निर्धारण।

**अध्ययन-विधि** — यह एक गुणात्मक, व्याख्यात्मक पाठ-विश्लेषण (textual-hermeneutic analysis) है। मूल पाठ के लिए आर. पी. कांगले के समीक्षित संस्करण (क्रिटिकल एडिशन) को आधार बनाया गया है, जिसमें अधिकरण-अध्याय-सूत्र क्रम से सन्दर्भ दिये गये हैं;[3] हिन्दी अनुवाद-व्याख्या के लिए वाचस्पति गैरोला के चौखम्बा-संस्करण का उपयोग किया गया है।[4] द्वितीयक स्रोतों में काङ्गले का अध्ययन-खण्ड, ट्रौटमन, ओलिवेल एवं रङ्गराजन के अनुसन्धान सम्मिलित हैं। सन्दर्भ-निर्देश अधिकरण.अध्याय (यथासम्भव सूत्र-संख्या सहित) पद्धति से दिये गये हैं — यथा, अर्थशास्त्र १.५ का अर्थ है प्रथम अधिकरण (विनयाधिकारिक) का पाँचवाँ अध्याय।

## 2. अर्थशास्त्र: ग्रन्थ-परिचय, विद्या-चतुष्टय और नेतृत्व की पहली शर्त

### 2.1 ग्रन्थ एवं संरचना

अर्थशास्त्र पन्द्रह अधिकरणों (पुस्तकों), एक सौ पचास अध्यायों और लगभग छह हजार सूत्रों में विभक्त है। प्रथम अधिकरण 'विनयाधिकारिक' राजा (नेतृत्व) के प्रशिक्षण, मन्त्रि-अमात्य-चयन और मन्त्रणा-विधि का निरूपण करता है; द्वितीय अधिकरण 'अध्यक्षप्रचार' लगभग तीस विभागाध्यक्षों के कार्य-विवरण प्रस्तुत करता है; पञ्चम अधिकरण में वेतन-व्यवस्था, षष्ठ में राज्य के सप्ताङ्ग, और शेष अधिकरणों में विधि, दण्ड, विदेश-नीति एवं आपत्काल-प्रबन्धन का विवेचन है।[5] कौटिल्य स्वयं 'अर्थ' की परिभाषा करते हुए कहते हैं — "मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः" (अर्थशास्त्र १५.१.१) — अर्थात् मनुष्यों की जीविका ही अर्थ है, मनुष्यों से युक्त भूमि ही अर्थ है। यह परिभाषा ही संकेत करती है कि कौटिल्य का शास्त्र मूलतः *मनुष्य-प्रबन्धन* का शास्त्र है — और यही उसे शैक्षिक प्रशासन के लिए प्रासंगिक बनाती है, क्योंकि शिक्षा-संस्था भी अन्ततः मनुष्यों (शिक्षकों, विद्यार्थियों, कर्मचारियों, अभिभावकों) का ही संगठन है।

कौटिल्य का प्रशासनिक दृष्टिकोण तीन स्तम्भों पर टिका है: *यथार्थवाद* (व्यवस्था वैसी बनाओ जैसी मनुष्य-प्रकृति वास्तव में है, वैसी नहीं जैसी होनी चाहिए), *व्यवस्था-निष्ठा* (व्यक्ति नहीं, प्रक्रिया और संरचना संस्था को चलाती है) और *लोक-हित-लक्ष्य* (सम्पूर्ण तन्त्र का प्रयोजन प्रजा का योगक्षेम है)। ये तीनों स्तम्भ आधुनिक संगठन-सिद्धान्त की भाषा में क्रमशः व्यवहारवादी यथार्थ-बोध, संस्थागत संरचना-निर्माण और हितधारक-केन्द्रितता कहे जा सकते हैं।

### 2.2 विद्या-चतुष्टय और शिक्षा का स्थान

अर्थशास्त्र का आरम्भ ही विद्या-मीमांसा से होता है — "आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः" (अर्थशास्त्र १.२.१) — आन्वीक्षिकी (तर्क-दर्शन), त्रयी (वैदिक ज्ञान), वार्ता (कृषि-पशुपालन-वाणिज्य अर्थात् अर्थोपार्जन-विद्या) और दण्डनीति (शासन-विद्या) — ये चार विद्याएँ हैं।[6] कौटिल्य की मौलिकता यह है कि जहाँ मानव-सम्प्रदाय केवल दण्डनीति को ही विद्या मानता था और अन्य सम्प्रदाय दो या तीन को, वहाँ कौटिल्य चारों की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हैं — अर्थात् वे ज्ञान के बहुविध, अन्तर्विषयी स्वरूप के पक्षधर हैं। आन्वीक्षिकी की महिमा में वे कहते हैं —

> प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्। आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता॥ (अर्थशास्त्र १.२.१२)

अर्थात् आन्वीक्षिकी समस्त विद्याओं का प्रदीप, समस्त कर्मों का उपाय और समस्त धर्मों का आश्रय है।[7] शैक्षिक दृष्टि से यह घोषणा असाधारण है: तर्कशीलता और आलोचनात्मक चिन्तन (critical thinking) को समस्त ज्ञान-शाखाओं की आधारशिला घोषित करना — जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० की 'क्रिटिकल थिंकिंग' सम्बन्धी अपेक्षा का प्राचीन पूर्वरूप है। शैक्षिक प्रशासक के लिए निहितार्थ स्पष्ट है — संस्था का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति को बहुविषयक ज्ञान-सम्पदा (दर्शन-नैतिकता, विषय-ज्ञान, वित्त-अर्थ-प्रबन्धन और नियम-प्रशासन — मानो आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के आधुनिक समरूप) से युक्त होना चाहिए।

### 2.3 विनय एवं इन्द्रियजय: नेतृत्व की पहली शर्त आत्म-अनुशासन

प्रथम अधिकरण का नाम ही 'विनयाधिकारिक' है — अर्थात् प्रशिक्षण/अनुशासन-विषयक। अध्याय १.५ (वृद्धसंयोग) में कौटिल्य विद्या-ग्रहण की योग्यता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं — "शुश्रूषा-श्रवण-ग्रहण-धारण-विज्ञान-ऊह-अपोह-तत्त्वाभिनिविष्ट-बुद्धिं विद्या विनयति, नेतरम्" (अर्थशास्त्र १.५) — विद्या उसी बुद्धि को अनुशासित करती है जिसमें सुनने की इच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विशेष ज्ञान, ऊह (तर्क से आगे बढ़ना), अपोह (दोष का निराकरण) और तत्त्व-निष्ठा हो; अन्य को नहीं।[8] यह अधिगम-प्रक्रिया का आठ-चरणीय प्राचीन प्रतिमान है, जो आधुनिक शिक्षा-मनोविज्ञान की अवधान-ग्रहण-धारण-अनुप्रयोग शृंखला से विलक्षण साम्य रखता है। आगे कहा गया है — "श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते, प्रज्ञाया योगः, योगादात्मवत्ता" (अर्थशास्त्र १.५) — श्रवण (अध्ययन) से प्रज्ञा, प्रज्ञा से योग (अनुप्रयोग-क्षमता) और योग से आत्मवत्ता (आत्म-स्वामित्व) उत्पन्न होती है। ज्ञान का अन्तिम फल आत्म-नियन्त्रण है — यह सूत्र शिक्षा के उद्देश्य-विमर्श की दृष्टि से आज भी उद्धरणीय है।

अध्याय १.६ (इन्द्रियजय) में कौटिल्य नेतृत्व की पहली और अनिवार्य शर्त घोषित करते हैं — "विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात् कार्यः" (अर्थशास्त्र १.६.१) — विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है, जो काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष — इन छह आन्तरिक शत्रुओं (षड्रिपु) के त्याग से सिद्ध होता है। और फिर वह सूत्र, जो सम्पूर्ण ग्रन्थ का सार कहा जा सकता है — "कृत्स्नं हि शास्त्रमिदम् इन्द्रियजयः" (अर्थशास्त्र १.६.३) — यह समग्र शास्त्र ही (वस्तुतः) इन्द्रियजय है।[9] कौटिल्य ऐतिहासिक उदाहरणों की लम्बी सूची देते हैं कि किस प्रकार दाण्डक्य भोज, जनमेजय, तालजंघ आदि राजा इन्द्रिय-असंयम से नष्ट हुए, और जामदग्न्य तथा अम्बरीष जैसे आत्म-संयमी चिरकाल तक समृद्ध रहे (१.६)।

---

[3] R. P. Kangle, The Kauṭilīya Arthaśāstra, Parts I–III (Sanskrit text, English translation, and study), University of Bombay, 1960–1965 (द्वितीय संस्करण 1969–1972; पुनर्मुद्रण Motilal Banarsidass, Delhi)। प्रस्तुत आलेख के सभी अधिकरण.अध्याय.सूत्र-सन्दर्भ इसी संस्करण के अनुसार हैं।

[4] वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्र (मूल संस्कृत पाठ, हिन्दी अनुवाद एवं विवेचन सहित), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। हिन्दी छायानुवादों में उदयवीर शास्त्री का अनुवाद भी उल्लेखनीय है।

[5] ग्रन्थ-संरचना के विवरण के लिए द्रष्टव्य: Kangle, Part III (A Study); तथा Patrick Olivelle, King, Governance, and Law in Ancient India: Kauṭilya's Arthaśāstra, Oxford University Press, 2013 की भूमिका।

[6] अर्थशास्त्र १.२.१ (विद्यासमुद्देश)। अध्याय १.२–१.४ में चारों विद्याओं का क्रमशः निरूपण है; १.३ में त्रयी-वार्ता तथा १.४ में वार्ता-दण्डनीति का विवेचन।

[7] अर्थशास्त्र १.२.१२। आन्वीक्षिकी के अन्तर्गत कौटिल्य सांख्य, योग और लोकायत की गणना करते हैं (१.२.१०) — अर्थात् आस्तिक-नास्तिक दोनों दर्शन-धाराओं का समावेश, जो उनके ज्ञान-दृष्टिकोण की उदारता का सूचक है।

[8] अर्थशास्त्र १.५ (वृद्धसंयोग)। इसी अध्याय में दिनचर्या-अन्तर्गत विद्यार्थी-राजकुमार के लिए पूर्वाह्न में शस्त्र-शिक्षा और अपराह्न में इतिहास-श्रवण तथा 'वृद्धों (अनुभवी विद्वानों) के संयोग' से विनय-वृद्धि का निर्देश है — आजीवन-अधिगम और मार्गदर्शन (mentoring) का प्राचीन रूप।

[9] अर्थशास्त्र १.६.१–१.६.३ (इन्द्रियजय-प्रकरण)। कांगले-संस्करण में "कृत्स्नं हि शास्त्रम् इदम् इन्द्रियजयः" (१.६.३) — सम्पूर्ण शास्त्र का प्रयोजन-वाक्य।

आधुनिक निहितार्थ प्रत्यक्ष है। शैक्षिक-नेतृत्व-साहित्य में जिसे ‘सेल्फ-अवेयरनेस’, ‘इमोशनल इंटेलिजेंस’ और नैतिक नेतृत्व की आधारभूमि कहा जाता है, उसे कौटिल्य नेतृत्व-योग्यता की *पूर्व-शर्त* के रूप में रखते हैं — पद, अधिकार और संसाधन तभी सौंपे जाएँ जब व्यक्ति ने अपने भीतर के लोभ, क्रोध और अहंकार पर विजय पा ली हो। जिस प्रधानाचार्य या कुलपति ने स्वयं पर शासन नहीं किया, वह संस्था पर शासन नहीं कर सकता — यह कौटिल्यीय सूत्र शैक्षिक-प्रशासक-प्रशिक्षण (यथा, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान — NIEPA — के नेतृत्व-कार्यक्रमों) में मूल्य-शिक्षा के समावेश का शास्त्रीय आधार प्रदान करता है।

उल्लेखनीय यह भी है कि कौटिल्य आत्म-अनुशासन को एक बार अर्जित कर लेने योग्य स्थिति नहीं, *आजीवन साधना* मानते हैं। १.५ में राजा के लिए ‘वृद्ध-संयोग’ — अनुभवी, शास्त्रज्ञ वृद्धों की निरन्तर संगति — का विधान है, और १.७ में निर्देश है कि इन्द्रियजयी राजा भी आचार्यों एवं अमात्यों को यह अधिकार दे कि वे उसे प्रमाद से रोकें; छिद्र (दोष) देखकर टोकने वाले सहायक ही राजा की वास्तविक रक्षा हैं। आधुनिक भाषा में यह सतत व्यावसायिक विकास, समकक्ष-समीक्षा (peer review) और ‘क्रिटिकल फ्रेंड’ की अवधारणा है — संस्था-प्रमुख के लिए भी मार्गदर्शक-मण्डल और स्पष्टवादी सहयोगी अनिवार्य हैं, स्तुति-पाठक परिकर नहीं। शैक्षिक प्रशासन के प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों में यह द्विस्तरीय कौटिल्यीय सूत्र — भीतर इन्द्रियजय, बाहर वृद्ध-संयोग — नेतृत्व-नैतिकता के पाठ्य-प्रारूप की रीढ़ बन सकता है।

## 3. मानव-संसाधन के सूत्र: चयन, परीक्षण और परिलब्धि

### 3.1 अमात्य-सम्पत्: योग्यता-मानदण्डों की सूची (१.९)

कौटिल्य के अनुसार राज्य अकेले नहीं चलता — “सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते। कुर्वीत सचिवांस्तस्मात् तेषां च शृणुयान्मतम्॥” (अर्थशास्त्र १.७.९) — राजत्व सहायकों से सिद्ध होता है; एक पहिया नहीं चलता; अतः सचिव नियुक्त करे और उनका मत सुने।[10] यह सूत्र सहभागी प्रशासन (participative administration) और टीम-नेतृत्व का प्राचीनतम सुस्पष्ट कथन है — संस्था-प्रमुख की एकल-नायकत्व-वृत्ति का निषेध।

अध्याय १.९ में ‘अमात्य-सम्पत्’ अर्थात् उच्च अधिकारी की आदर्श योग्यताओं की सूची दी गयी है: वह जानपद (देश-स्थिति का ज्ञाता/स्थानीय जड़ों वाला), अभिजात (कुलीन — जिसे आज हम विश्वसनीय पृष्ठभूमि कहेंगे), कृतशिल्प (कला-कौशल में प्रशिक्षित), चक्षुष्मान् (शास्त्र-दृष्टि-सम्पन्न), प्राज्ञ (मेधावी), धारयिष्णु (धारणा-शक्ति-युक्त), दक्ष (कुशल), वाग्मी (प्रभावी वक्ता), प्रगल्भ (आत्मविश्वासी), प्रतिपत्तिमान् (प्रत्युत्पन्नमति), उत्साह-प्रभाव-युक्त, क्लेशसह (परिश्रम-सहिष्णु), शुचि (शुद्ध-चरित्र), मैत्र (मैत्रीपूर्ण), दृढभक्ति (संस्था-निष्ठ), शील-बल-आरोग्य-सत्त्व-सम्पन्न, स्तम्भ-चापल-हीन (न जड़ न चंचल), सम्प्रिय (सबका प्रिय) तथा वैर-अकर्ता (वैर न ठानने वाला) हो (अर्थशास्त्र १.९.१)।[11] विशेष द्रष्टव्य है कि कौटिल्य इस आदर्श सूची के साथ व्यावहारिक छूट भी देते हैं — जिनमें ये गुण चतुर्थांश या अर्धांश में हों, वे क्रमशः अवर और मध्यम कोटि के अमात्य हैं (१.९.२) — अर्थात् चयन में आदर्श और उपलब्ध के बीच श्रेणीकृत समझौते की यथार्थवादी नीति। साथ ही परीक्षण-विधि भी बतायी गयी है: कर्म-साक्ष्य से दक्षता की, संवाद से वाग्मिता की, सहवासियों से शुचिता और शील की परीक्षा हो — अर्थात् दस्तावेज़-सत्यापन, साक्षात्कार और पूर्ववृत्त-जाँच (reference check) की त्रिविध आधुनिक चयन-प्रविधि का पूर्वाभास।

शैक्षिक प्रशासन में यह सूची लगभग ज्यों-की-त्यों उपयोगी है। प्रधानाचार्य, प्राचार्य, कुलसचिव या कुलपति के चयन में आज भी यही प्रश्न केन्द्रीय हैं: विषय-दक्षता (कृतशिल्प), संस्थागत-सन्दर्भ-बोध (जानपद), संवाद-क्षमता (वाग्मी), निर्णय-क्षमता (प्रतिपत्तिमान्), चारित्रिक शुद्धता (शुचि), तनाव-सहिष्णुता (क्लेशसह) और सम्बन्ध-कौशल (सम्प्रिय, वैर-अकर्ता)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० ने भी संस्था-प्रमुखों के चयन को वरिष्ठता-मात्र से हटाकर योग्यता, नेतृत्व-क्षमता और प्रशासनिक कौशल पर आधारित करने का निर्देश दिया है — जो अमात्य-सम्पत् की मेधा-आधारित (merit-based) चयन-दृष्टि का ही आधुनिक रूपान्तर है।[12]

### 3.2 उपधा-परीक्षा: सत्यनिष्ठा-परीक्षण (१.१०)

कौटिल्य चयन को नियुक्ति पर समाप्त नहीं मानते। अध्याय १.१० में वे ‘उपधा’ — गुप्त परीक्षण — की चतुर्विध योजना देते हैं, जिससे अमात्यों की शुचिता-अशुचिता जानी जाए: धर्मोपधा (धर्म-च्युति का प्रलोभन देकर धर्म-निष्ठा की परीक्षा), अर्थोपधा (आर्थिक प्रलोभन देकर लोभ की परीक्षा), कामोपधा (काम-प्रलोभन की परीक्षा) और भयोपधा (भय दिखाकर धैर्य-निष्ठा की परीक्षा)।[13] जो जिस परीक्षा में उत्तीर्ण हो, उसे तत्सम्बद्ध विभाग सौंपा जाए — धर्मोपधा-शुद्ध को न्याय-कार्य, अर्थोपधा-शुद्ध को कोश-कार्य, सर्वोपधा-शुद्ध को मन्त्रि-पद (अर्थशास्त्र १.१०)। उल्लेखनीय है कि स्वयं कौटिल्य इस प्रकरण में पूर्वाचार्यों के अति-आक्रामक परीक्षण-प्रस्तावों को अस्वीकार भी करते हैं और चेतावनी देते हैं कि परीक्षण की आड़ में निर्दोष मन को दूषित न किया जाए — अर्थात् परीक्षण-नैतिकता की भी चिन्ता उन्हें है।

आधुनिक निहितार्थ द्विस्तरीय है। प्रथम, *पद-अनुरूप सत्यनिष्ठा-परीक्षण* का सिद्धान्त — वित्तीय दायित्व (बर्सर, वित्त-अधिकारी, क्रय-समिति) के लिए आर्थिक-शुचिता का प्रमाण; परीक्षा-नियन्त्रक जैसे संवेदनशील पदों के लिए गोपनीयता-निष्ठा और दबाव-प्रतिरोध का प्रमाण; छात्र-सम्पर्क-पदों के लिए आचरण-शुद्धता का प्रमाण। द्वितीय, *योग्यता-पद-संगति* (person-job fit) का सिद्धान्त — जो जिस परीक्षा में खरा उतरे, उसे वही दायित्व मिले। आज की भाषा में यह सत्यनिष्ठा-जाँच (integrity screening), पूर्ववृत्त-सत्यापन (antecedent verification) और सुनियोजित पदस्थापन-नीति है। शैक्षिक संस्थाओं में वित्तीय अनियमितता, परीक्षा-गोपनीयता-भंग और यौन-उत्पीड़न जैसी जिन समस्याओं से आन्तरिक शिकायत समितियाँ और लेखा-परीक्षाएँ जूझती हैं, उनकी *निवारक* कुंजी कौटिल्य चयन-स्तर पर ही लगा देना चाहते हैं।

### 3.3 वेतन-व्यवस्था: अभिप्रेरणा और प्रतिधारण (५.३)

पञ्चम अधिकरण का तृतीय अध्याय ‘भृत्यभरणीय’ सम्भवतः विश्व-साहित्य की प्राचीनतम व्यवस्थित वेतनमान-सारणी है। कौटिल्य राज्य-आय के अनुपात में (कुल आय के चतुर्थांश तक) वेतन-व्यय की सीमा निर्धारित करते हैं और ऋत्विक्-आचार्य-मन्त्री-पुरोहित-सेनापति आदि सर्वोच्च पदों के लिए ४८,००० पण वार्षिक से लेकर निम्नतम सेवकों के ६० पण तक की श्रेणीबद्ध सारणी देते हैं (अर्थशास्त्र ५.३)।[14] इस व्यवस्था के तीन सिद्धान्त ध्यातव्य हैं: (क) *पर्याप्तता* — वेतन इतना हो कि सेवक “भर्तुः न कोपम्, न लोभम् गच्छेयुः” — न असन्तोष से विद्रोही हों, न अभाव से भ्रष्ट; (ख) *श्रेणी-औचित्य* — दायित्व-गुरुता के अनुपात में पारिश्रमिक; (ग) *सामाजिक सुरक्षा* — सेवा में मृत सेवकों के पुत्र-स्त्रियों के भरण-पोषण तथा वृद्ध-रुग्ण सेवकों के अनुग्रह का विधान — जो पेंशन एवं पारिवारिक कल्याण-योजनाओं का प्राचीन पूर्वरूप है। उल्लेखनीय यह भी है कि

---

[10] अर्थशास्त्र १.७.९ (सहाय-साध्यता-सूत्र)। यही भाव १.१५ (मन्त्राधिकार) में मन्त्रणा-विधि के विस्तार से पुष्ट होता है, जहाँ कौटिल्य अति-गोपनीय एकल-निर्णय और अनियन्त्रित बहु-परामर्श — दोनों अतियों के दोष गिनाकर कार्यानुसार सन्तुलित परामर्श का विधान करते हैं।

[11] अर्थशास्त्र १.९.१ (अमात्योत्पत्ति)। गुण-सूची का अनुवाद-भाव कांगले (Part II) एवं गैरोला के अनुसार। १.९.२ में गुणों की मात्रा के आधार पर उत्तम-मध्यम-अवर वर्गीकरण।

[12] राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०, विद्यालय-प्रशासकों एवं प्रधानाचार्यों की मेधा-आधारित नियुक्ति तथा संस्था-प्रमुखों के नेतृत्व-गुण सम्बन्धी संस्तुतियाँ (अध्याय ५ एवं १९); उच्च-शिक्षा में शासी मण्डल की नियुक्ति-योग्यताएँ (अनुच्छेद १९.२–१९.३ का आशय)।

[13] अर्थशास्त्र १.१० (उपधाभिः शौचाशौच-ज्ञानम् अमात्यानाम्)। कौटिल्य यह भी निर्दिष्ट करते हैं कि परीक्षण छद्म-प्रकरणों द्वारा हो, किन्तु राजा स्वयं को या राज-महिषी को प्रलोभन-पात्र न बनाये — परीक्षण-प्रक्रिया की मर्यादा का विधान।

[14] अर्थशास्त्र ५.३ (भृत्यभरणीयम्)। सर्वोच्च वेतन ४८,००० पण (ऋत्विक्, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज आदि) से न्यूनतम ६० पण तक की श्रेणियाँ; कुल वेतन-व्यय राज्य-आय के चतुर्थांश की सीमा में रखने तथा मृत सेवकों के परिजनों के भरण का निर्देश। द्रष्टव्य: Kangle, Part II; L. N. Rangarajan, Kautilya: The Arthashastra, Penguin Books, 1992 का वेतन-सारणी-विवेचन।

इसी सारणी में आचार्य और विद्वान् (५.३ के क्रम में) को सम्मानजनक उच्च वेतन-श्रेणी में रखा गया है — शिक्षक-वेतन की गरिमा का शास्त्रीय समर्थन।

शैक्षिक प्रशासन के लिए सन्देश सीधा है: शिक्षक-प्रतिधारण (retention) और शिक्षण-गुणवत्ता का सम्बन्ध सम्मानजनक, समयबद्ध और पारदर्शी परिलब्धि-व्यवस्था से है। अल्प-वेतन पर तदर्थ नियुक्तियों की वर्तमान व्याधि — जिस पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० भी चिन्तित है — का कौटिल्यीय निदान यही है कि अपर्याप्त वेतन या तो पलायन उत्पन्न करता है या भ्रष्टाचार; दोनों संस्था के कोश और यश को क्षीण करते हैं। साथ ही, कौटिल्य केवल आर्थिक अभिप्रेरणा तक सीमित नहीं हैं — वे कार्य-सिद्धि पर सम्मान, पद-वृद्धि और राजा की प्रत्यक्ष प्रशंसा को भी प्रेरणा-साधन मानते हैं, और आपत्काल में स्वामिभक्त सेवकों के त्याग का विशेष संज्ञान लेने का निर्देश देते हैं। आधुनिक शब्दावली में यह वित्तीय एवं अ-वित्तीय अभिप्रेरकों (monetary and non-monetary incentives) का संयोजन है: शिक्षक-सम्मान, पदोन्नति-पथ की स्पष्टता, उत्कृष्टता-पुरस्कार और संकट-काल (यथा महामारी-काल के ऑनलाइन-शिक्षण-श्रम) में योगदान की संस्थागत स्वीकृति — ये सब वेतन-सारणी जितने ही आवश्यक प्रतिधारण-उपकरण हैं।

## 4. संगठन एवं पर्यवेक्षण: सप्ताङ्ग, अध्यक्ष-प्रणाली और वित्तीय शुचिता

### 4.1 सप्ताङ्ग राज्य का संस्था-रूपक (६.१)

षष्ठ अधिकरण के प्रथम अध्याय में कौटिल्य राज्य के सात अंग (प्रकृतियाँ) गिनाते हैं — "स्वामी-अमात्य-जनपद-दुर्ग-कोश-दण्ड-मित्राणि प्रकृतयः" (अर्थशास्त्र ६.१.१)।[15] यह सप्ताङ्ग-सिद्धान्त राज्य का प्रथम *प्रणाली-सिद्धान्त* (systems theory) है — राज्य कोई एकल इकाई नहीं, परस्पर-निर्भर अवयवों का जैविक तन्त्र है, जिसमें प्रत्येक अंग की सम्पत् (उत्कृष्टता) और व्यसन (विकार) समग्र तन्त्र को प्रभावित करते हैं। इस सिद्धान्त का शिक्षा-संस्था पर रूपकात्मक मानचित्रण विलक्षण रूप से सटीक बैठता है:

| सप्ताङ्ग | अर्थशास्त्रीय आशय | शैक्षिक-संस्थागत समरूप |
|---|---|---|
| स्वामी | नेतृत्व — विनीत, इन्द्रियजयी राजा | संस्था-प्रमुख: प्रधानाचार्य/कुलपति/शासी मण्डल |
| अमात्य | मन्त्रि-अधिकारी-वर्ग | प्रशासनिक संवर्ग: उपप्राचार्य, कुलसचिव, विभागाध्यक्ष, कार्यालय |
| जनपद | जन और भूमि — करद, उत्पादक प्रजा | हितधारक: विद्यार्थी, अभिभावक, समुदाय, पूर्व-छात्र |
| दुर्ग | सुरक्षा-अवसंरचना | भौतिक-डिजिटल अवसंरचना: भवन, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, सूचना-तन्त्र |
| कोश | राजकोष — धर्म-अर्जित, संकट-पर्याप्त | संस्थागत वित्त: अनुदान, शुल्क, निधि, अक्षय-कोष |
| दण्ड | बल एवं अनुशासन-तन्त्र | नियम-परिनियम, आचार-संहिता, अनुशासन-अपील समितियाँ |
| मित्र | सहयोगी राज्य | सहयोगी संस्थाएँ: सम्बद्धता-बोर्ड, विश्वविद्यालय-संघ, उद्योग-साझेदार, समुदाय-संगठन |

इस रूपक की व्याख्यात्मक शक्ति दो सूत्रों में है। प्रथम, कौटिल्य प्रत्येक प्रकृति की आदर्श-सम्पत् बताते हैं — यथा कोश वह जो "धर्मेण अर्जित" हो, स्वर्ण-रजत-प्रचुर हो और दीर्घ आपत्ति को भी सह सके (६.१) — अर्थात् शिक्षा-संस्था का वित्त नैतिक स्रोतों से अर्जित और संकट-निधि-युक्त हो। द्वितीय, अङ्गों में पूर्व-पूर्व की गुरुता होते हुए भी कौटिल्य का प्रसिद्ध निष्कर्ष है कि आपदा की तीव्रता अंग-विशेष की स्थिति पर निर्भर है और सभी अंग परस्पर-पूरक हैं — नेतृत्व कितना ही उत्कृष्ट हो, यदि 'कोश' रिक्त या 'जनपद' (हितधारक-विश्वास) क्षुब्ध है तो संस्था व्यसनग्रस्त होगी। संस्थागत विकास योजना (Institutional Development Plan) बनाते समय इन सातों अंगों की सम्पत्-व्यसन-समीक्षा एक देशज SWOT-ढाँचे का काम कर सकती है।

### 4.2 अध्यक्ष-प्रणाली: विभागीय उत्तरदायित्व (अधिकरण २)

द्वितीय अधिकरण 'अध्यक्षप्रचार' में कोषाध्यक्ष, अकराध्यक्ष, सुवर्णाध्यक्ष, कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, सीताध्यक्ष, नावध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष (माप-तौल) आदि लगभग तीस विभागाध्यक्षों के कार्य, अर्हता, कार्य-विधि और लेखा-दायित्व का विवरण है।[16] यह विश्व की प्राचीनतम विस्तृत *कार्य-विवरणिका* (job description manual) है। इसके तीन संगठन-सिद्धान्त शैक्षिक प्रशासन के लिए ग्राह्य हैं: (क) कार्य-विभाजन एवं विशेषज्ञता — प्रत्येक कार्य-क्षेत्र का पृथक् उत्तरदायी अधिकारी, जैसे आधुनिक संस्था में परीक्षा-नियन्त्रक, वित्त-अधिकारी, ग्रन्थपाल, छात्र-कल्याण-अधिष्ठाता; (ख) लिखित प्रक्रिया — प्रत्येक अध्यक्ष के लिए निर्धारित विधियाँ, अभिलेख और प्रतिवेदन — अर्थात् कार्यालय-पद्धति-पुस्तिका (office manual) और मानक प्रचालन प्रक्रिया; (ग) सामूहिक-दायित्व एवं पृथक्-उत्तरदायित्व का सन्तुलन — कौटिल्य अनेक कार्यों में 'बहुमुख्य' (अनेक अधिकारियों की संयुक्त) व्यवस्था तथा अस्थायी पद-परिवर्तन (rotation) का निर्देश देते हैं, जिससे कोई एक व्यक्ति दीर्घकाल तक किसी लाभ-पद पर जमकर दुरुपयोग न कर सके — आधुनिक क्रय-समितियों, संयुक्त-हस्ताक्षर-व्यवस्था और आवधिक कार्यभार-परिवर्तन का ठीक यही तर्क है।

### 4.3 अपहरण-निवारण: लेखा, अंकेक्षण और पारदर्शिता (२.८–२.९)

अध्याय २.८ (अक्षपटल-प्रकरण से सम्बद्ध लेखा-व्यवस्था) में कौटिल्य राज्य के केन्द्रीय लेखागार, आय-व्यय-नीवी (शेष) के अभिलेखन, लेखा-वर्ष (आषाढ़ी पूर्णिमा को वर्षान्त), समयबद्ध लेखा-प्रस्तुति और विलम्ब-दण्ड की व्यवस्था देते हैं, तथा अधिकारियों द्वारा राजस्व-अपहरण (गबन) के *चालीस उपायों* (हरणोपाय) की सूची प्रस्तुत करते हैं — यथा, पूर्व-सिद्ध आय को पश्चात् दिखाना, पश्चात्-सिद्ध को पूर्व दिखाना, अदेय को देय करना, मूल्य-परिवर्तन, माप-परिवर्तन आदि (अर्थशास्त्र २.८)।[17] गबन की इस सूक्ष्म वर्गीकरण-सूची को आधुनिक न्यायालयीन-लेखा (forensic accounting) की आद्य-तालिका कहना अत्युक्ति नहीं। कौटिल्य का मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद यहाँ शिखर पर है —

> यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा। अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः॥ मत्स्या यथान्तःसलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः। युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ता ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः॥ (अर्थशास्त्र २.९.३२–३३)

अर्थात् जैसे जीभ पर रखे मधु या विष को न चखना असम्भव है, वैसे ही अर्थ-कार्य में नियुक्त व्यक्ति के लिए राजा के थोड़े-से भी अर्थ का आस्वाद न लेना असम्भव है; जैसे जल के भीतर विचरते मत्स्य कब जल पी लेते हैं, यह नहीं जाना जा सकता, वैसे ही कार्य में नियुक्त अधिकारी कब धन ले लेते हैं, यह नहीं जाना जा सकता।[18] इसीलिए कौटिल्य दोषारोपण की प्रतीक्षा नहीं करते; वे *तन्त्र-रचना* करते हैं: नियमित लेखा-प्रतिवेदन, स्वतन्त्र अभिलेख-सत्यापन, अधिकारियों का आवधिक स्थानान्तरण, गुप्त सूचना देने वाले को पुरस्कार (सूचक को अपहृत

[15] अर्थशास्त्र ६.१.१ (मण्डलयोनि-प्रकरण के अन्तर्गत राज्याङ्ग-निरूपण)। ६.१ में ही प्रत्येक प्रकृति की आदर्श सम्पत् (स्वामि-सम्पत्, अमात्य-सम्पत्, जनपद-सम्पत् आदि) का वर्णन है; अष्टम अधिकरण (व्यसनाधिकारिक) में इन्हीं अंगों के व्यसनों (विकारों) की तुलनात्मक गुरुता का विवेचन।

[16] अर्थशास्त्र, अधिकरण २ (अध्यक्षप्रचार), अध्याय २.११–२.३६ के अन्तर्गत विविध अध्यक्षों के कार्य-विवरण; २.९ में उपयुक्त (नियुक्त) अधिकारियों की परीक्षा एवं बहुमुख्य-व्यवस्था तथा अनित्य (आवधिक) पद-स्थापन का निर्देश।

[17] अर्थशास्त्र २.८ (समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् — अपहृत राजस्व की वापसी); हरणोपायों की चालीस-सूत्री गणना इसी अध्याय में। लेखा-वर्ष, कर्म-सिद्धि-प्रतिवेदन एवं विलम्ब-दण्ड की व्यवस्था २.७ (अक्षपटल — लेखागार-प्रकरण) में।

[18] अर्थशास्त्र २.९.३२–३३ (उपयुक्तपरीक्षा)। अनुवाद-भाव कांगले (Part II) के आधार पर लेखक का। इसी प्रकरण में सूचक (गबन की सूचना देने वाले) को सिद्ध राशि का अंश पुरस्कार-रूप में देने का विधान है — आधुनिक सचेतक-प्रोत्साहन का पूर्वरूप।

राशि का अंश), और उपयुक्त (नियुक्त अधिकारी) की सम्पत्ति-वृद्धि की जाँच (२.९ — उपयुक्तपरीक्षा)।

गुप्तचर-तन्त्र (गूढपुरुष — १.११–१.१२) कौटिल्यीय पर्यवेक्षण का विवादास्पद अंग है, जिसकी लोकतान्त्रिक सीमाएँ आगे (खण्ड ७) विवेचित हैं; किन्तु उसका *कार्यात्मक सार* — नेतृत्व तक स्वतन्त्र, अ-पदसोपानिक सूचना-प्रवाह — आधुनिक संस्थाओं में वैध रूपों में रूपान्तरित हो सकता है: आन्तरिक-बाह्य लेखा-परीक्षा, शैक्षिक अंकेक्षण (academic audit), NAAC-प्रत्यायन की सत्यापन-यात्राएँ, छात्र-संतुष्टि-सर्वेक्षण, अनाम शिकायत-पेटिका/लोकपाल और सचेतक-संरक्षण (whistle-blower protection)। कौटिल्य का सूत्र इतना ही है: प्रशासक को केवल वही सूचना नहीं मिलनी चाहिए जो पदसोपान छनकर ऊपर भेजता है; सत्य के स्वतन्त्र प्रणाल भी चाहिए। साथ ही २.९ की यह चेतावनी भी स्मरणीय है कि जनसामान्य को हानि पहुँचाकर स्वयं को पुष्ट करने वाला अधिकारी दण्डनीय है, किन्तु राजस्व-वृद्धि करने वाला निर्दोष सेवक सम्मान्य — अर्थात् अंकेक्षण का लक्ष्य भय-संस्कृति नहीं, न्याय-संस्कृति है।

## 5. राजा की दिनचर्या और सेवक-नेतृत्व (१.१९)

अध्याय १.१९ (राजप्रणिधि) में कौटिल्य राजा की दिनचर्या का सूक्ष्म विधान करते हैं: दिन और रात्रि को आठ-आठ भागों (प्रत्येक लगभग डेढ़ घण्टे) में बाँटकर प्रत्येक भाग का कार्य नियत है — प्रथम भाग में रक्षा-विधान और आय-व्यय का श्रवण, द्वितीय में *पौर-जानपदों (नगरवासियों-ग्रामवासियों) के कार्यों की सुनवाई*, तृतीय में स्नान-भोजन-स्वाध्याय, चतुर्थ में कर-प्राप्ति और अध्यक्ष-नियोजन, पञ्चम में मन्त्रि-परिषद् से पत्राचार-मन्त्रणा एवं गुप्त-सूचना-श्रवण, षष्ठ में स्वैर-विहार अथवा मन्त्र (चिन्तन), सप्तम में सैन्य-निरीक्षण, अष्टम में सेनापति के साथ विक्रम-चिन्तन; रात्रि के भागों में भी गूढ़पुरुष-दर्शन, स्वाध्याय, शयन और ब्राह्म मुहूर्त में शास्त्र-चिन्तन तथा कार्य-स्मरण का विधान है (अर्थशास्त्र १.१९)।[19] यह समय-सारणी आधुनिक समय-प्रबन्धन (time-blocking) की शास्त्रीय पूर्वज है: नेतृत्व का समय संयोग पर नहीं, विधान पर चले; उसमें हितधारक-सुनवाई, वित्त-समीक्षा, स्वाध्याय (व्यावसायिक विकास), चिन्तन-काल और विश्राम — सबका नियत स्थान हो।

इसी अध्याय में सुगम्यता (accessibility) का प्रसिद्ध निर्देश है: कार्यार्थियों (काम लेकर आये लोगों) को द्वार पर प्रतीक्षा न कराये — "दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासम् आसन्नैः कार्यते" — जो राजा दुर्दर्श (कठिनाई से दर्शन देने वाला) होता है, उसके निकटस्थ लोग कार्य-अकार्य को उलट-पुलट देते हैं — जिससे प्रजा में असन्तोष उत्पन्न होता है और राजा शत्रु के अधीन हो जाता है (अर्थशास्त्र १.१९)। शैक्षिक-प्रशासकीय अनुवाद: जो प्रधानाचार्य/कुलपति शिक्षकों-विद्यार्थियों के लिए अगम्य है, उसकी संस्था बिचौलियों (आसन्न-वर्ग) की बन जाती है; 'खुले द्वार' की नीति केवल शिष्टता नहीं, भ्रष्टाचार-निरोध और विश्वास-निर्माण की संरचनात्मक युक्ति है।

और फिर वह श्लोक-युग्म, जो सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन-दर्शन का महावाक्य बन गया है —

> प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्। नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥ (अर्थशास्त्र १.१९.३४)

प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में उसका हित; राजा का हित वह नहीं जो उसे स्वयं को प्रिय है, अपितु वही जो प्रजा को प्रिय (हितकर) है।[20] इसके ठीक पूर्व का सूत्र है — "राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्" (अर्थशास्त्र १.१९.३३) — राजा का व्रत है निरन्तर उद्यम (उत्थान) और उसका यज्ञ है कार्यों का अनुशासन-सम्पादन। रॉबर्ट ग्रीनलीफ़ ने १९७० के दशक में जिस 'सेवक-नेतृत्व' (servant leadership) की अवधारणा दी — नेता पहले सेवक है, और उसकी सफलता की कसौटी यह है कि उसके अनुयायी अधिक स्वस्थ, स्वतन्त्र और समर्थ बनते हैं या नहीं[21] — उसका सारतत्त्व कौटिल्य का यह सूत्र दो सहस्राब्दी पूर्व कह चुका है। शैक्षिक नेतृत्व-साहित्य में विद्यार्थी-केन्द्रितता, कल्याणकारी नेतृत्व और 'लीडर एज़ सर्वेंट' की जो धाराएँ हैं, उनके लिए "प्रजासुखे सुखं राज्ञः" एक देशज, सांस्कृतिक रूप से अनुगुंजित (culturally resonant) घोषणा-वाक्य है: संस्था-प्रमुख का 'सुख' — उसकी सफलता, प्रतिष्ठा, मूल्यांकन — विद्यार्थियों और शिक्षकों के सुख-हित से ही परिभाषित हो, भवनों की भव्यता या पद के वैभव से नहीं।

## 6. आधुनिक शैक्षिक प्रशासन से समन्वय: POSDCORB, NEP 2020 और संस्थागत अभ्यास

### 6.1 POSDCORB के साथ मानचित्रण

आधुनिक प्रशासन-शास्त्र में लूथर गुलिक द्वारा प्रस्तावित POSDCORB — Planning (नियोजन), Organizing (संगठन), Staffing (नियुक्ति/कार्मिक-व्यवस्था), Directing (निर्देशन), Coordinating (समन्वय), Reporting (प्रतिवेदन) और Budgeting (बजट-निर्माण) — प्रशासकीय कार्यों का प्रचलित संक्षेप है।[22] अर्थशास्त्र के सूत्रों का इस ढाँचे से मानचित्रण उसकी कार्यात्मक आधुनिकता प्रकट करता है:

1. **नियोजन:** षाड्गुण्य एवं आपत्-चिन्तन (अधिकरण ६–९ की नीति-विवेचना), जनपद-निवेश (२.१ — नयी बसाहटों की योजना): संस्थागत विकास योजना, नामांकन-प्रक्षेपण, अवसंरचना-योजना।
2. **संगठन:** सप्ताङ्ग (६.१) और अध्यक्ष-प्रणाली (अधिकरण २): संगठन-संरचना, विभाग-गठन, कार्य-विवरण।
3. **नियुक्ति:** अमात्य-सम्पत् (१.९), उपधा-परीक्षा (१.१०), वेतन-विधान (५.३): भर्ती, सत्यनिष्ठा-जाँच, पदस्थापन, परिलब्धि।
4. **निर्देशन:** राजप्रणिधि (१.१९), विनय-इन्द्रियजय (१.५–१.६): नेतृत्व-आचरण, आदर्श-स्थापन (leading by example), समय-प्रबन्धन।
5. **समन्वय:** मन्त्र-अध्याय (१.१५ — मन्त्रणा-विधि: मन्त्रियों से परामर्श, मत-बहुलता का विवेक, गोपनीयता): समिति-प्रणाली, शैक्षिक परिषद्, स्टाफ़-बैठकें।
6. **प्रतिवेदन:** अक्षपटल-लेखा (२.८), उपयुक्तपरीक्षा (२.९), गूढ़-सूचना-प्रणाल: सूचना-प्रबन्धन, वार्षिक प्रतिवेदन, अंकेक्षण, अनुश्रवण।
7. **बजट:** आय-व्यय-नीवी-शरीर (२.६ — समाहर्ता द्वारा आय-व्यय-संकलन), कोश-सम्पत् (६.१), वेतन-सीमा (५.३): बजट-निर्माण, व्यय-नियन्त्रण, संकट-निधि।

यह मानचित्रण दर्शाता है कि POSDCORB के सातों कार्यों के लिए अर्थशास्त्र में न केवल समरूप अवधारणाएँ हैं, अपितु अनेक स्थलों पर वे अधिक सूक्ष्म हैं — यथा, नियुक्ति-कार्य में आधुनिक ढाँचे प्रायः योग्यता-परीक्षण तक रुकते हैं, जबकि कौटिल्य सत्यनिष्ठा-परीक्षण और परीक्षण-नैतिकता तक जाते हैं।

### 6.2 राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० के सन्दर्भ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० की अनेक संस्तुतियों के साथ कौटिल्यीय सूत्रों की संगति द्रष्टव्य है।[23] प्रथम, नीति उच्च-शिक्षा-संस्थाओं में सुयोग्य, स्वतन्त्र शासी

---

[19] अर्थशास्त्र १.१९ (राजप्रणिधि)। दिन-रात्रि के आठ-आठ नालिका-भागों की कार्य-सारणी; कार्यार्थियों की अबाध सुनवाई ("आसन्न-द्वार" न रखने) और आत्ययिक (अत्यावश्यक) कार्य को स्थगित न करने का निर्देश भी इसी अध्याय में।

[20] अर्थशास्त्र १.१९.३४। कांगले-पाठ के अनुसार; गैरोला-संस्करण में भी यह श्लोक राजधर्म के सार-रूप में व्याख्यात है।

[21] Robert K. Greenleaf, Servant Leadership: A Journey into the Nature of Legitimate Power and Greatness, Paulist Press, New York, 1977। ग्रीनलीफ़ की कसौटी — "क्या सेवित व्यक्ति अधिक स्वस्थ, विवेकी, स्वतन्त्र और स्वयं सेवक बनने की ओर बढ़ते हैं?" — की "प्रजानां च हिते हितम्" से संगति स्वयंसिद्ध है।

[22] Luther Gulick, "Notes on the Theory of Organization", in Luther Gulick & Lyndall Urwick (eds.), Papers on the Science of Administration, Institute of Public Administration, New York, 1937।

[23] राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२०: शासी मण्डल एवं संस्थागत अभिशासन (अध्याय १९), संस्थागत पुनर्संरचना (अध्याय १०–११), वित्तीय पारदर्शिता एवं परोपकारी-चरित्र (अध्याय १८ एवं २६ का

मण्डल (BoG) की स्थापना और क्रमिक संस्थागत स्वायत्तता की संस्तुति करती है — मन्त्रि-परिषद् सम्बन्धी कौटिल्यीय विवेक (१.१५: "मन्त्रिपरिषदं… कार्यसामर्थ्यात् — आवश्यकता और कार्य-सामर्थ्य के अनुसार परिषद् गठित हो और राजा बहुमत अथवा कार्य-सिद्धि-कर मत का अनुसरण करे") सामूहिक-विवेक-आधारित शासन का ऐसा ही प्रतिमान है, जिसमें प्रमुख परामर्श सुनता है किन्तु उत्तरदायित्व-सहित निर्णय लेता है। द्वितीय, नीति की संस्थागत विकास योजना की कल्पना सप्ताङ्ग-समीक्षा से समृद्ध की जा सकती है (खण्ड ४.१)। तृतीय, नीति शैक्षिक और प्रशासनिक संवर्गों में मेधा-आधारित नियुक्ति एवं पदोन्नति तथा प्रधानाचार्यों-शिक्षकों के लिए मानक-आधारित व्यावसायिक मानदण्डों (यथा, राष्ट्रीय शिक्षक व्यावसायिक मानक) की बात करती है — अमात्य-सम्पत् की तर्क-पद्धति यही है। चतुर्थ, नीति वित्तीय पारदर्शिता, अंकेक्षण एवं सार्वजनिक प्रकटीकरण और शिक्षा के व्यापारीकरण पर अंकुश चाहती है — २.८–२.९ का सम्पूर्ण अपहरण-निवारण-तन्त्र इसी की शास्त्रीय पूर्वपीठिका है। पञ्चम, नीति का 'हल्का किन्तु कसा हुआ' (light but tight) नियामक-सूत्र कौटिल्य के उस सन्तुलन की याद दिलाता है जिसमें दण्ड न अति-तीक्ष्ण हो (जिससे प्रजा उद्विग्न हो) और न अति-मृदु (जिससे मात्स्यन्याय — बड़ी मछली द्वारा छोटी को निगलने की अराजकता — उत्पन्न हो); "तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयो भवति, मृदुदण्डः परिभूयते, यथार्हदण्डः पूज्यते" (अर्थशास्त्र १.४) — यथोचित दण्ड करने वाला ही पूज्य होता है।[24] विद्यालयी अनुशासन-नीति से लेकर नियामक-आयोगों तक, 'यथार्ह दण्ड' का यह मध्यम-मार्ग आज भी प्रशासनिक विवेक की कसौटी है।

### 6.3 व्यावहारिक निहितार्थ-सूची

उपर्युक्त विश्लेषण से शैक्षिक प्रशासकों के लिए निम्न कार्यसूत्र निगमित होते हैं: (१) नेतृत्व-चयन एवं प्रशिक्षण में चारित्रिक-भावनात्मक परिपक्वता (इन्द्रियजय) को औपचारिक कसौटी बनाना; (२) पद-विशिष्ट सत्यनिष्ठा-जाँच और योग्यता-पद-संगति की पदस्थापन-नीति; (३) प्रत्येक प्रशासनिक भूमिका का लिखित कार्य-विवरण एवं मानक प्रचालन प्रक्रिया (अध्यक्ष-प्रणाली); (४) वित्तीय पदों पर संयुक्त-दायित्व, आवधिक कार्यभार-परिवर्तन और सम्पत्ति-असंगति-जाँच; (५) समयबद्ध लेखा-प्रस्तुति, स्वतन्त्र अंकेक्षण और सार्वजनिक प्रकटीकरण; (६) प्रमुख की नियत हितधारक-सुनवाई (खुला द्वार) और संरक्षित शिकायत-प्रणाल; (७) संस्था-प्रमुख की दिनचर्या में वित्त-समीक्षा, कक्षा-भ्रमण, स्वाध्याय और चिन्तन के नियत खण्ड; (८) वेतन-पर्याप्तता एवं सेवा-सुरक्षा को गुणवत्ता-निवेश मानना; (९) संस्थागत विकास योजना में सप्ताङ्ग-समीक्षा; (१०) समस्त निर्णयों की अन्तिम कसौटी — विद्यार्थी-हित ("प्रजासुखे सुखम्")।

## 7. सीमाएँ एवं सावधानियाँ

अर्थशास्त्र का शैक्षिक-प्रशासनिक विनियोग विवेकहीन नहीं हो सकता; कम-से-कम चार सावधानियाँ अनिवार्य हैं।

### प्रथम — राजतन्त्रीय बनाम लोकतान्त्रिक सन्दर्भ।

अर्थशास्त्र एक राजतन्त्र के लिए लिखा गया है जिसमें सत्ता का स्रोत राजा है और प्रजा शासन की *पात्र* है, *भागीदार* नहीं। आधुनिक शिक्षा-संस्था एक लोकतान्त्रिक विधि-राज्य के भीतर, संविधान-प्रदत्त मौलिक अधिकारों (अनुच्छेद १४, १९, २१, २१-क) और सहभागी शासन की संस्कृति में कार्य करती है। अतः कौटिल्यीय सूत्रों का ग्रहण *संरचनात्मक-कार्यात्मक* स्तर पर हो (उत्तरदायित्व, प्रक्रिया, शुचिता), *सत्ता-मीमांसीय* स्तर पर नहीं (एकाग्र प्रभुत्व, प्रजा की निष्क्रियता)। 'स्वामी' का अर्थ आज एकल शासक नहीं, उत्तरदायी और प्रत्याह्वेय (accountable) नेतृत्व-संरचना है — जो स्वयं शासी मण्डल, परिनियमों और न्यायिक पुनरीक्षण के अधीन है।

### द्वितीय — गुप्तचर-तन्त्र का असंगत अंश।

संस्था, स्त्री, सत्री, तापस-व्यञ्जन आदि गूढ़पुरुषों (१.११–१.१२) तथा विष-कन्या और गुप्त-वध जैसे प्रकरणों का शिक्षा-जगत् में कोई स्थान नहीं है। कर्मचारियों-विद्यार्थियों की गुप्त निगरानी निजता के अधिकार (पुट्टस्वामी-निर्णय, २०१७ के अनन्तर) और विश्वास-आधारित शैक्षिक संस्कृति — दोनों की विरोधी है। जो ग्राह्य है वह केवल *पारदर्शी और विधिसम्मत* सूचना-प्रणाल हैं: घोषित अंकेक्षण, अनाम प्रतिपुष्टि, लोकपाल, सचेतक-संरक्षण। निगरानी और अनुश्रवण का भेद यही है — अनुश्रवण घोषित मानदण्डों पर, ज्ञात प्रक्रिया से, गरिमा-सहित होता है।

### तृतीय — साधन-शुद्धि का प्रश्न।

अर्थशास्त्र में स्थान-स्थान पर साम-दान-भेद-दण्ड और कूट-युद्ध की जो साधन-निरपेक्षता है, वह शिक्षा जैसे नैतिकता-निर्माणकारी क्षेत्र में अनुकरणीय नहीं। यह भी स्मरणीय है कि विद्वानों में ग्रन्थ के रचयिता, काल (मौर्यकालीन मूल बनाम शती १–३ ई. का संकलित पाठ) और एक-कर्तृत्व पर मतभेद है;[25] अतः 'चाणक्य-नीति' के नाम पर प्रचलित प्रत्येक कथन को अर्थशास्त्र का प्रामाणिक सूत्र मानने की लोकप्रिय भूल से बचना चाहिए और विनियोग समीक्षित पाठ पर ही आधारित होना चाहिए।

### चतुर्थ — नैतिक चयन-दृष्टि की अनिवार्यता।

समग्रतः, अर्थशास्त्र से हमें *चयनपूर्वक* ग्रहण करना है — जैसे कौटिल्य स्वयं पूर्वाचार्यों से करते हैं: "इति चाणक्य-मत का भी परीक्षण हो।" ग्राह्य है उसका संगठन-विज्ञान, शुचिता-तन्त्र, सेवा-भाव और यथार्थ-बोध; त्याज्य है उसका निगरानी-अतिरेक, दण्ड-केन्द्रित मनुष्य-दृष्टि का अतिवाद और साधन-निरपेक्षता। यह चयन ही 'भारतीय ज्ञान-परम्परा से प्रेरणा' का उत्तरदायी अर्थ है — अन्धानुकरण नहीं, विवेकपूर्ण पुनर्पाठ।

## 8. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन ने दिखाया कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रशासन का एक सम्पूर्ण, आन्तरिक रूप से सुसंगत शास्त्र प्रस्तुत करता है, जिसकी धुरी चार सूत्रों में समेटी जा सकती है: *नेतृत्व की पहली विजय स्वयं पर हो* (इन्द्रियजय, १.६); *मनुष्य का चयन गुण और शुचिता की परीक्षा से हो* (अमात्य-सम्पत् एवं उपधा, १.९–१.१०); *संस्था व्यक्ति से नहीं, संरचना-प्रक्रिया-अभिलेख से चले* (अध्यक्ष-प्रणाली एवं अक्षपटल, अधिकरण २); और *समस्त तन्त्र की कसौटी प्रजा का सुख-हित हो* (१.१९.३४)। ये चारों सूत्र आधुनिक शैक्षिक प्रशासन की केन्द्रीय चुनौतियों — नेतृत्व-नैतिकता, भर्ती-शुचिता, वित्तीय पारदर्शिता और विद्यार्थी-केन्द्रितता — से सीधे संवाद करते हैं, और POSDCORB जैसे पश्चिमी ढाँचों के प्रत्येक कार्य-वर्ग के लिए देशज समरूप उपलब्ध कराते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० जब भारतीय ज्ञान-परम्परा में जड़ें रखने वाले, किन्तु विश्व-स्तरीय संस्थागत नेतृत्व की माँग करती है, तब अर्थशास्त्र — राजतन्त्रीय सत्ता-मीमांसा और निगरानी-अतिरेक को छोड़कर, संगठन-विज्ञान और सेवा-नैतिकता को ग्रहण कर — शैक्षिक प्रशासकों के प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों, नेतृत्व-विकास-कार्यक्रमों और संस्थागत नीति-निर्माण के लिए एक प्रामाणिक स्रोत-ग्रन्थ बन सकता है। भावी शोध की दिशाएँ स्पष्ट हैं: अर्थशास्त्र-आधारित नेतृत्व-प्रशिक्षण-मॉड्यूलों का निर्माण एवं प्रभाव-मूल्यांकन, सप्ताङ्ग-ढाँचे पर आधारित संस्था-स्वास्थ्य-मापनी

---

आशय), 'हल्के किन्तु कसे हुए' नियमन का सूत्र (अध्याय १८), तथा भारतीय ज्ञान-परम्परा (अनुच्छेद ४.२७ आदि)।

[24] अर्थशास्त्र १.४ (दण्डनीति-प्रकरण)। इसी अध्याय में दण्ड के अभाव में 'मात्स्यन्याय' की उद्भावना — "अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति" — बलवान् द्वारा दुर्बल के भक्षण की अराजकता।

[25] रचयिता-काल-विवाद के लिए द्रष्टव्य: Thomas R. Trautmann, Kauṭilya and the Arthaśāstra: A Statistical Investigation of the Authorship and Evolution of the Text, Brill, Leiden, 1971; तथा Olivelle (2013) की भूमिका, जो वर्तमान पाठ को बहुस्तरीय रचना-प्रक्रिया का परिणाम मानती है। यह विवाद ग्रन्थ के प्रशासनिक अन्तर्दृष्टि-मूल्य को न्यून नहीं करता, किन्तु ऐतिहासिक दावों में संयम आवश्यक बनाता है।

का विकास, तथा कामन्दकीय नीतिसार और शुक्रनीति जैसे परवर्ती नीति-ग्रन्थों के साथ तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन। "प्रजासुखे सुखं राज्ञः" का शिक्षा-रूपान्तर ही इस समूचे विमर्श का सार-वाक्य है — विद्यार्थी के सुख में ही संस्था का सुख है, विद्यार्थी के हित में ही उसका हित।

## सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची


1. Kangle RP. The Kauṭilīya Arthaśāstra. Part I: A Critical Edition with a Glossary; Part II: An English Translation with Critical and Explanatory Notes; Part III: A Study. Bombay: University of Bombay; 1960-1965. 2nd ed. 1969-1972. Reprint. Delhi: Motilal Banarsidass.
2. गैरोला वाचस्पति, सम्पादक-अनुवादक. कौटिलीय अर्थशास्त्र. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.
3. शास्त्री उदयवीर, अनुवादक. कौटिलीय अर्थशास्त्र (हिन्दी व्याख्या). दिल्ली: मेहरचन्द लछमनदास.
4. Shamasastry R, editor and translator. Kautilya's Arthaśāstra. Mysore: Government Oriental Library / Mysore Printing House; 1909. Text. 1915. Translation.
5. Olivelle P. King, Governance, and Law in Ancient India: Kauṭilya's Arthaśāstra—A New Annotated Translation. New York: Oxford University Press; 2013.
6. Rangarajan LN. Kautilya: The Arthashastra. Edited, rearranged, translated and introduced. New Delhi: Penguin Books; 1992.
7. Trautmann TR. Kauṭilya and the Arthaśāstra: A Statistical Investigation of the Authorship and Evolution of the Text. Leiden: E. J. Brill; 1971.
8. Altekar AS. State and Government in Ancient India. 3rd ed. Delhi: Motilal Banarsidass; 1958.
9. Prasad B. Theory of Government in Ancient India. Allahabad: The Indian Press; 1927.
10. Mookerji RK. Ancient Indian Education: Brahmanical and Buddhist. London: Macmillan; 1947. Reprint. Delhi: Motilal Banarsidass.
11. शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार. राष्ट्रीय शिक्षा नीति २०२० (हिन्दी संस्करण). नयी दिल्ली: शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार; २०२०.
12. Gulick L, Urwick L, editors. Papers on the Science of Administration. New York: Institute of Public Administration, Columbia University; 1937.
13. Greenleaf RK. Servant Leadership: A Journey into the Nature of Legitimate Power and Greatness. New York: Paulist Press; 1977.
14. Sihag BS. Kautilya: The True Founder of Economics. New Delhi: Vitasta Publishing; 2014.